वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप

लेखक

डॉ. अशोक कुमार गदिया

प्रथम संस्करण — 2018

प्रकाशक

मेवाड़ यूनिवर्सिटी प्रेस प्रा. लिमिटेड

4117, प्रथम तल, नया बाज़ार

नई दिल्ली–6

लेखक का परिचय

डॉ॰ अशोक कुमार गदिया

बी॰कॉम॰, एफ॰सी॰ए॰, पी॰एच॰डी॰

डॉ॰ अशोक कुमार गदिया ने वाणिज्य स्नातक की परीक्षा राजस्थान विश्वविद्यालय से वर्ष 1980 में उत्तीर्ण की। नवम्बर 1988 में आपने ''द इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउन्ट्स ऑफ इण्डिया'' की सदस्यता प्राप्त की। वर्ष 1988 में आपने मै॰ अनिल अशोक एण्ड एसोसिएट्स, सी॰ए॰ फर्म की स्थापना की, जिसके आप सक्रिय सदस्य और वरिष्ठ सहभागी हैं। आपको कराधान के क्षेत्र में 30 वर्षों का अनुभव है। इस अनुभव को आपने अपने तक ही सीमित नहीं रखा अपितु 'कर' विषय के जिज्ञासु छात्रों का भी पथ प्रदर्षन किया। आपको इस कार्य के लिए दिल्ली सरकार के 'बिक्री कर' विभाग की राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र सलाहकार समिति का सदस्य नियुक्त किया गया। कर सम्बन्धी अपने अतिविशिष्ट ज्ञान की वजह से

'कर विभाग' के क्षेत्र से जुड़े व्यक्तियों में आपका नाम सम्मान के साथ लिया जाता है। आप पिछले 29 वर्षों से कर अधिकारियों के अनिवार्य प्रशिक्षण का कार्य भी कर रहे हैं।

डॉ. गदिया का प्रारम्भ से ही शिक्षा के क्षेत्र से अनन्य संबंध रहा है। आप इस क्षेत्र में कुछ विशेष करना चाहते हैं। अपने विद्यार्थी काल से ही आप छात्र आंदोलनों के साथ जुड़े रहे। देश प्रेम के साथ–साथ शिक्षा प्रेम भी आपकी अन्तरात्मा में रचा–बसा है। शिक्षा को आप अमीर–गरीब प्रत्येक वर्ग में पहुँचाना चाहते हैं। अपने जीवन काल में इस क्षेत्र की जो कमियाँ और परेशानियाँ आपको नजर आयीं, उनके समाधान का आपने दृढ़ता के साथ व सुनियोजित ढंग से निरन्तर प्रयास शुरू किया।

आपके हृदय में पुरातन भारतीय संस्कार कूट–कूट कर भरे हैं। आपके तरल–सरल हृदय में भारतीय संस्कारों की पुण्य गंगा अविरल बहती है। इसी भावधारा से ओत–प्रोत आपका हृदय भारत की हर पीढ़ी में उसी संस्कार के दर्शन करना चाहता है, ताकि सुनहरा तथा व्यवस्थित भारत बने। भारत की भावी पीढ़ी विद्वता के साथ–साथ संस्कारवान बने, इसलिये आपने शिक्षा ग्रहण करने के लिये नये संस्थान स्थापित करना प्रारम्भ किया ताकि सभी युवाओं को शिक्षा के समान अवसर प्राप्त हों। आपका उद्देश्य है कि शिक्षा संस्थानों में अध्यात्म विद्या की नींव पर भारतीय शिष्टता के संस्कार, देश प्रेम, लोक सेवा, संसार के पुरातन और नूतन शास्त्र, ज्ञान–विज्ञान व शिल्पकला आदि विभिन्न विषयों की वृद्धि हो। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आप दृढ़ता के साथ निरंतर गतिमान हैं। वर्तमान में आप भारत के विभिन्न संस्थानों के महत्वपूर्ण पदों पर आसीन हैं।

संस्थान एवं समाज की प्रगति में आप अति महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। आपका मानना है कि देश में सामाजिक परिवर्तन एवं उत्थान तभी संभव होगा जब युवा पीढ़ी जागरूक होगी और उसकी सोच में आमूल–चूल परिवर्तन होगा। आप विद्यार्थियों में देशभक्ति की भावना के साथ–साथ

भारत की शिष्टता, संस्कृति, सभ्यता तथा मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध हैं। आप प्रत्येक युवा के मानस पटल पर भारतीय संस्कारों की अमिट छाप को अंकित कर देना चाहते हैं। आपके जीवन का परम लक्ष्य है कि आप युवा पीढ़ी के साथ रहकर ही कार्य करते रहें। प्रभु आपको असीम शक्ति प्रदान करे।

आप जिन विभिन्न संस्थानों के पदेन अध्यक्ष एवं सदस्य हैं, इनके नाम इस प्रकार हैं –

(1)	मेवाड़ विश्वविद्यालय, चित्तौड़गढ़, राजस्थान	कुलाधिपति
(2)	मेवाड़ इन्स्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेन्ट सेक्टर–4सी, वसुन्धरा, गाजियाबाद (उ.प्र.)	अध्यक्ष
(3)	मेवाड़ लॉ इन्स्टीट्यूट सेक्टर–4सी, वसुन्धरा, गाजियाबाद	अध्यक्ष
(4)	मेवाड़ गर्ल्स कॉलेज गांधीनगर, चित्तौड़गढ़ (राज.)	संयुक्त सचिव
(5)	मेवाड़ गर्ल्स औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र गांधी नगर, चित्तौड़गढ़ (राज.)	संयुक्त सचिव
(6)	मेवाड़ गर्ल्स कॉलेज ऑफ टीचर्स ट्रेनिंग गांधी नगर, चित्तौड़गढ़ (राज.)	संयुक्त सचिव
(7)	मेवाड़ गर्ल्स आयुर्वेद नर्सिंग सेन्टर गांधी नगर, चित्तौड़गढ़ (राज.)	संयुक्त सचिव
(8)	मेवाड़ गर्ल्स एलोपैथिक नर्सिंग सेन्टर गांधी नगर, चित्तौड़गढ़ (राज.)	संयुक्त सचिव
(9)	एकात्म मानव दर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान, नई दिल्ली	उपाध्यक्ष

वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप

प्रातः स्मरणीय वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप का जन्म कुम्भलगढ में 9 मई वर्ष 1540 को हुआ। उनकी माँ का नाम था जयवंता कँवर एवं पिता का नाम महाराणा उदय सिंह था। उनको अस्त्र एवं शस्त्र की शिक्षा जयमल मेड़तिया ने दी थी। बचपन से ही वह देषभक्त थे। अपने कुल की मान–मर्यादा पर गौरव करते थे। किसी कीमत पर मेवाड़ पर दाग नहीं लगने देना चाहते थे। बचपन में वह तीक्ष्ण बुद्धि, चंचल एवं तेज़ दिमाग के थे। अस्त्र एवं शस्त्र विद्या में निपुण थे। वह स्वाभिमानी, साहसी एवं अपनी प्रजा से बहुत स्नेह करते थे। उनके

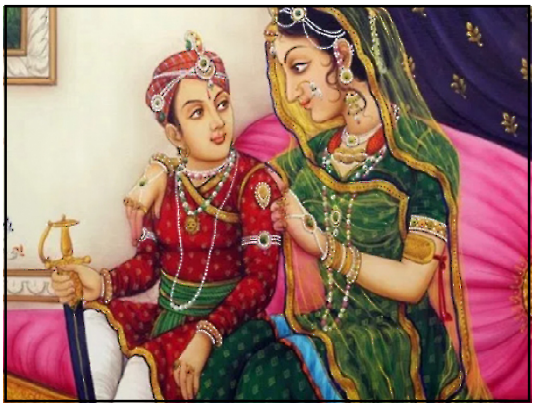

मन में कोई ऊँच–नीच व जातिगत भेद नहीं थे। बड़ों का और अपने कुल के उच्च संस्कारों का विशेष सम्मान करते थे। अपनी किशोरावस्था से ही उन्होंने अपने रण कौशल दिखाने शुरू कर दिये थे। उन्हें इस बात

का बहुत अफसोस था कि मेवाड़ की खानवा में महाराणा सांगा के नेतृत्व में हार हुई और सम्राट बाबर विजयी हुआ। उस युद्ध में राजपूत सरदारों का बड़ा नुकसान हुआ। काफी संख्या में राजपूत मारे गये तथा काफी घायल हो गये। वे अब लड़ने काबिल नहीं रहे। नई पीढ़ी को आने में अभी काफी समय था। इसी बीच अकबर ने सन् 1568 में चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। उस समय महाराणा उदय सिंह एवं सभी सामन्तों ने यह तय किया कि राज परिवार के सब लोग, अधिकांश सैन्य बल और सम्पति लेकर उदयपुर चले जायें तथा सैनिकों की एक टुकड़ी जयमल एवं फत्ता की ज़िम्मेदारी में किले की रक्षा के लिये रखी जाए। प्रताप ने उस समय चित्तौड़ में रहकर अकबर से मुकाबला करने की जिद्द की, पर उनकी नहीं सुनी गई। उन्हें भी उदयपुर जाना पड़ा। सन् 1559 में ही राजधानी चित्तौड़ से उदयपुर शिफ्ट कर दी गयी थी।

सन् 1568 में चित्तौड़ के किले पर युद्ध हुआ, जो कि बहुत भयंकर था। मेवाड़ के सैनिकों ने अपनी जान की आहूति देकर युद्ध लड़ा। अकबर के छक्के छुड़ा दिये। 6 महीने युद्ध चला। अन्त में जयमल एवं फत्ता अपने सभी सैनिकों के साथ अन्तिम दम तक लड़ते हुए मारे गये। किले में उपलब्ध रानियों ने जौहर किया। यह चित्तौड़ के किले का अन्तिम जौहर था। जब अकबर किले पर पहुंचा तो उन्हें कुछ भी नहीं मिला, सिवाय राख, नरमुण्ड, चील, कौए, कुत्ते आदि के। वह बहुत निराश हुआ और उसने अपनी विशाल सेना को आस–पास के इलाके में लूटपाट की इजाजत दी। इस लूटमार का नतीजा यह हुआ कि निर्दोष लोगों पर अकबर की सेना टूट पड़ी। कई घर, खेत, खलिहान उजड़ गये। खूब लूटमार हुई। महिलाओं के साथ जमकर बदसलूकी हुई और 30,000 लोग मारे गये। इस घटना से महाराणा प्रताप को बहुत दुःख पहुंचा। उन्होंने मन में ठान लिया कि अकबर को इस अत्याचार की कीमत चुकानी पड़ेगी। वर्ष 1572 में महाराणा उदय सिंह का देहान्त हो गया। मामूली औपचारिकता के साथ महाराणा प्रताप का राज तिलक हुआ और वह गद्दी पर बैठे। समय और

परिस्थितियाँ बिल्कुल विपरीत थीं, संसाधनों की भारी कमी थी। राजपूत योद्धा लगभग खत्म हो चुके थे। खानवा एवं चित्तौड़ के युद्ध के बाद लगभग सभी छोटे–मोटे ठिकानेदार एवं जागीरदार, राजे–महाराजे सब अकबर की अधीनता स्वीकार कर उसकी सेना में शामिल हो गये थे। अपनी बहू–बेटियाँ भी अकबर को दे दी थी। जो सभी नौरोज़ में भेजी गईं। यहाँ बता दें कि नौरोज़* का उत्सव ईरानी प्रथा के अनुसार प्रत्येक नये (सौर) वर्ष के प्रारंभ के दि (ता. 1 फरवरदीन) से 19 दिन तक मनाया जाता था। यह उत्सव अकबर ने ही अपने राज्य में प्रचलित किया था। दीवाने आम में एक 60 कदम लम्बा और 40 कदम चौड़ा शामियाना खड़ा किया जाता था, जिसके दरवाजे आदि सोने और चांदी के ज़रदोज़ी वस्त्रों, सुनहरी कलशों, मोतियों की मालाओं, पुर्तगाली बनातों, रूमी मख़मलों, ज़री के कामवाले बनारसी वस्त्रों और कमख़बों से सजाये जाते थे। कश्मीरी शालें लटकाई जाती थीं। फर्श पर ईरान और तुर्किस्तान की कालीनें बिछाई जाती थीं। यूरोप और चीन के रंग–बिरंगे परदे लटकाये जाते थे। भीतर सुन्दर–सुन्दर और अद्‌भुत चित्र, विलक्षण दर्पण, शीशे और बिल्लौर के कमल, कन्दीलें, झाड़, फानूस, कुमकुम (रंग–बिरंगे कांच के छोटे–बड़े गोले) लटकाये जाते थे। शामियाने के आस–पास आसमानी खेमे भी ताने जाते थे। शाही शामियाने के चारों ओर 5 एकड़ के घेरे में अमीर उमरा अपने–अपने डेरों को बड़ी शानोशौकत व ठाठबाट से सजाते थे। खानखाना व खानआजम के डेरों में भारत तथा विदेशों के अनेक प्रकार के अस्त्र–शस्त्र आदि का संग्रह रहता था। घड़ियां और घण्टे बजते थे, ज्योतिष–सम्बन्धी यन्त्र, गोल आकाशस्थ सितारों आदि के नक्शे और उनकी प्रत्यक्ष मूर्तियों में ग्रह और भिन्न–भिन्न सौर जगत चक्कर मारते थे। भार उठाने वाली कलें अपना काम करती थीं। तरह–तरह के बाजे बजते थे। शाही मंडप में सोने और चांदी के कामवाली रत्नजड़ित गद्‌दे वाली कुर्सियां रखी जाती

---

* (अकबरी दरबार; भाग 1, पृ. 289–89। वेणीप्रसाद; हिस्ट्री ऑफ जहांगीर; पृ. 97–98)।

थीं। बादशाह स्नान कर राजपूती ढंग की खिड़कीदार पगड़ी बांधकर चलता और ब्राह्मणों से टीका लगवाकर अपनी कुर्सी पर बैठता था। इन दिनों वह हर एक अमीर के डेरे में दर्शन देने जाता और अमीर अपनी शक्ति के अनुसार उसे भेंट देते, जिसके बदले में वह उन्हें पदवीं और जागीरें देता था। वह उस दिन तुलादान भी करता था। इस उत्सव में मीनाबाजार भी लगाया जाता था, जहाँ सब अमीर उमरावों की स्त्रियाँ आकर दुकानें लगाती थीं और सौदा भी प्रायः जनाना रखा जाता था, उसमें सभी प्रकार के सामान रेशम, रूमाल, टोपियाँ, मुर्गी, अण्डे, घोड़े, कालीन, मेवे, अनाज, भूसा, बढ़ई और लोहारी के काम, तेल और मिट्टी के बरतन आदि बिकने के लिये आते थे। सब दुकानों पर स्त्रियाँ ही बैठती थीं। ख्वाजासरा (हिंजड़े बनाये हुए पुरुष), कलमाकनियां (पहरा देने वाली स्त्रियाँ, जो विवाह नहीं कर सकती थीं) और उर्दूबेगनियां (बाजार से खरीदी गई स्त्रियाँ, जो लड़ाई के वक्त अमीरों के लिये बेगमों का काम देती थीं) अस्त्र–शस्त्र धारण कर प्रबंध के लिये घोड़े दौड़ाती थीं। पहरेदार भी स्त्रियाँ ही होती थीं। मालियों के स्थान पर मालिनें ही बाग सजाती थीं। बादशाह तथा उसकी बेगमें इस बाजार में सामान खरीदने के लिये आती थीं। बेगमें, बहिनें और कन्यायें बादशाह के पास बैठती थीं। अमीरों की स्त्रियाँ आकर सलाम करतीं, नज़राने देतीं और अपने बच्चों को उसके सामने उपस्थित करती थीं। इसके साथ ही दिन–रात नाच–गाना होता रहता था। यह सब राजपूत राजाओं और उनकी रानियों के लिये बड़ा लज्जाजनक होता था जिसे महाराणा प्रताप ने कभी स्वीकार नहीं किया था।

देष के सभी हिस्सों पर अकबर का आधिपत्य हो गया था। मेवाड़ का सबसे महत्वपूर्ण किला चित्तौड़ और उसके आस–पास का मैदानी इलाका अकबर के कब्जे में आ गया था, पर मेवाड़ की सत्ता एवं प्रजा ने अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की थी, यही मलाल था अकबर को, इसलिये वह बराबर अपने सेना प्रमुखों को मेवाड़ पर चढ़ाई करने को भेजता था, अधिक से अधिक सैन्य बल लेकर। उद्देष्य यही था कि ज्यादा से

ज्यादा लूटमार की जाए और महाराणा प्रताप को या तो मार दिया जाए या गिरफ्तार कर लिया जाए। यह तो होता ही था कि महाराणा प्रताप को जितना कमजोर किया जा सके, करें और उन्हें विवष किया जाए ताकि वह किसी भी प्रकार या तो भय से, आतंक से, लोभ से या आराम से जिन्दगी बिताने के मकसद से अकबर की अधीनता स्वीकार करे। घर–परिवार सगे–सम्बंधी सभी महाराणा प्रताप को यही समझाते थे कि अकबर बादषाह ने पूरे हिन्दुस्तान को जीत लिया है। वह बहुत बड़ी शक्ति बन चुका है। हम उससे कब तक लड़ेंगे। हमारे पास न साधन हैं, न धन है और न ही लड़ने के लिये सैनिक बचे हैं। पर महाराणा प्रताप अडिग थे। उन्हें अपना स्वाभिमान, मेवाड़ का गौरवषाली इतिहास, अपनी क्षत्रिय परम्परा व अपने शौर्य की अनुभूति का मान था। वह मेवाड़ को मुगलों के अधीन नहीं होने दे रही थी।

बड़े मुष्किल हालात में मेवाड़ का शासन चल रहा था। उन्हीं दिनों गुजरात से लौटते हुए सवाई मान सिंह जयपुर जोकि अकबर की सेना के महान सेनापतियों में से एक थे, बड़े पराक्रमी योद्धा थे, असल में अकबर ने आधा हिन्दुस्तान मान सिंह के बलबूते पर ही जीता था, उदयपुर आये। महाराणा प्रताप से मिलने की इच्छा व्यक्त की। वह वैसे तो महाराणा प्रताप के मौसेरे भाई थे, बलवान थे, बराबर के योद्धा थे, अकबर के दरबार में बड़ा स्थान रखते थे, महाराणा प्रताप ने उनके ठहरने–खाने का उचित प्रबन्ध उदयपुर के बाहर उदय सागर झील पर किया। उन्हें सम्मानपूर्वक ठहराया गया। महाराणा साहब से उनकी भेंट हुई। मान सिंह ने प्रस्ताव रखा कि आप अकबर से संधि कर लीजिये और उन्हें हिन्दुस्तान का बादषाह मान लीजिये। उनके दरबार में चलिये और आराम की ज़िन्दगी व्यतीत करिये। महाराणा साहब ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। आपसी बातचीत में थोड़ा विवाद भी हो गया। महाराणा साहब को यह मलाल था कि मान सिंह ने अपनी बुआ की शादी अकबर से कर राजपूत वंष पर कलंक लगाया है। राजपूतों की मान–मर्यादा को नीचा किया है तथा मुगलों की गुलामी कर

कुल वंष की परम्परा का सत्यानाष किया है। मेवाड़ का स्वर्णिम इतिहास है। यहां मातृभूमि के लिये सर्वस्व न्यौछावर करने एवं जीने–मरने की परम्परा है। यहाँ के नौजवान बलिदानों की प्रतिस्पर्धा करते हैं। वे मर जायेंगे, मिट जायेंगे, अपनी जान की बाजी लगा देंगे, पर मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं करेंगे। इस तरह के वचनों से मान सिंह बड़े लज्जित हुए। उन्हें आत्मग्लानि हुई। उन्हें इतनी खरी–खोटी सुनने की न उम्मीद थी, न इतना सुनने की क्षमता थी। उन्हें तो हिन्दुस्तान के बादषाह के शक्तिषाली सेनापति होने का घमण्ड था। वह वहाँ से नाराज होकर चले गये और कह गये कि मैं महाराणा का मान मर्दन करने जल्दी ही आऊँगा। देखता हूँ कैसे होते हैं मेवाड़ के बहादुर? कैसे लड़ेंगे मुझसे और मेरी सेना से? उस पर महाराणा साहब ने कहा कि जबभी मेवाड़ में आओगे तो स्वागत करेंगे, आप हमारे भाई हैं। हम आपसे लड़ना नहीं चाहते हैं पर यदि अकबर के दूत बनकर सेना लेकर आओगे तो हम आपका डटकर मुकाबला करेंगे और आपको बताएंगे कि मेवाड़ी सेना कैसे दुष्मनों का कत्लेआम करती है, कैसे उनको खदेड़ती है, कैसे उनका मान मर्दन करती है? यह घटना जून 1573 की है।

इस तरह महाराणा प्रताप एवं मान सिंह में थोड़ा मनमुटाव हो गया था। उसका पहला मुख्य कारण था मान सिंह का अपनी बुआ की अकबर से शादी करवाना और उनके दरबार में गुलामी करना। अपने युद्ध कौषल का उपयोग कर तुर्कों एवं मुगलों को शक्तिषाली बनाना। राणा सांगा के खानवा के युद्ध की हार का बदला लेना। अकबर द्वारा वर्ष 1568 में चित्तौड़ के आसपास 20 कि.मी. में लूटपाट एवं कत्लेआम करना, महिलाओं के साथ बदसलूकी करना था। इन कारणों से महाराणा प्रताप अकबर एवं मान सिंह से बहुत क्षुब्ध थे पर फिर भी उन्होंने मान सिंह को उचित सम्मान दिया। पर उनके साथ बैठकर भोजन करना उचित नहीं समझा। अपने ज्येष्ठ पुत्र को साथ बिठाया। महाराणा प्रताप का यही कहना था कि मेवाड़ स्वतंत्र राज्य है। इसका अपना गौरवषाली इतिहास है। अपनी संस्कृति एवं स्वस्थ

परम्परा है। हम स्वतंत्र हैं। न हम किसी को अपने साथ मिला रहे हैं और न हमें अपने में कोई मिलाये। किसी और बादषाह या राजा के अधीन कार्य करना हमारे स्वभाव में नहीं है। मान सिंह एवं समस्त जयपुर घराना पहले चित्तौड़ के अधीन ही था। वे महाराणा कुम्भा के काल से चित्तौड़ के ही जागीरदार के रूप में जयपुर इलाके पर राज्य कर रहे थे। मान सिंह पहले व्यक्ति थे जो अकबर के दरबार में जा बैठे तथा उनके साथ अपना बेटी–रोटी का व्यवहार स्थापित किया।

मान सिंह उदयपुर से आगरा पहुँचे तथा उनके साथ जो व्यवहार मेवाड़ में हुआ उसका वर्णन अकबर के दरबार में किया। अकबर को इसका बदला लेने के लिये उकसाया। अकबर हमेषा इसी तरह के विवादों का इन्तज़ार करते थे। उन्हें लगा कि यह सही अवसर है, जहाँ राजपूत आपस में लड़ेंगे, मरेंगे एवं कमज़ोर होंगे। उन्होंने मान सिंह के साथ विषाल सेना भेजकर मेवाड़ विजय कर महाराणा प्रताप का मान मर्दन करने का आदेश दिया। विशाल सेना जिसकी संख्या लगभग एक लाख थी, आगरा से चलकर माण्डलगढ़ तक आकर रुक गयी। मान सिंह की सेना में मुख्य योद्धा थे गाजी खाँ बक्षी, ख्वाजा मुहम्मद रफी, षियाबुद्दीन गुरोह, पायन्दा कण्ज्जाक, अली मुराद, उजवक, काजी खाँ, इब्राहिम चिष्ती, शेख मंसूर, ख्वाजा ग्यासुद्दीन, अली आसिफ खाँ, सैयद अहमद खाँ, सैयद हाषिम खाँ, जगन्नाथ कछावा, माधो सिंह, लूण कर्ण आदि ये सभी बड़े जबर्रदस्त योद्धा थे। इनके साथ बहुत बड़ी सेना थी। यह अप्रैल 1576 की बात है। जब महाराणा को पता चला कि बादषाह अकबर की ओर से कुंवर मान सिंह विषाल सेना लेकर मेवाड़ पर चढ़ाई कर चुके हैं तथा अपना अन्तिम पड़ाव माण्डलगढ़ पर डाल दिया है और युद्ध की तैयारी कर रहे हैं।

महाराणा ने भी अपनी तैयारी शुरू की। युद्ध के साधन एवं सैनिकों की बड़ी भारी कमी थी पर युद्ध तो लड़ना ही था। महाराणा कुम्भलगढ़ से गोगुन्दा आये और युद्ध की तैयारी शुरू की। महाराणा की सेना में लगभग

20,000 सैनिक थे तथा मुख्य योद्धा थे। स्वयं महाराणा प्रताप, हाकिम खाँ सूर, राम सिंह तंवर (ग्वालियर) एवं उनके तीन पुत्र शालिवाहन, भवानी सिंह तथा प्रताप सिंह भामाषाह तथा उनका भाई ताराचन्द, झाला मान सिंह (बड़ीसादड़ी) झाला विदा (देलवाड़ा) सोन गरा, मान सिंह डोडिया, भीम सिंह, रावत कृष्ण दास, रावत नेत सिंह, रावत सांगा, राठौड़ रामदास, राणा पुंजा, पुरोहित गोपीनाथ आदि। हल्दी घाटी के युद्ध शुरू होने से पूर्व की तीन घटनाएँ महत्वपूर्ण हैं, उनका ब्यौरा इस प्रकार है :–

1. युद्ध की तैयारी के दौरान कुंवर मान सिंह एक बार षिकार खेलने गये थे। गुप्तचरों ने यह सूचना महाराणा को दी। महाराणा के साथ जो सरदार थे, उन्होंने कहा कि यहीं मान सिंह का काम तमाम कर देते हैं पर महाराणा ने मना कर दिया और कहा कि यह धोखाधड़ी का काम है। हम क्षत्रियों को यह शोभा नहीं देता।

2.
बाहलेल खाँ जोकि बादषाह अकबर का भांजा था, बड़ा ही बलिष्ठ था। उसने अपने मामू को वचन दिया था कि मैं महाराणा प्रताप को बिना युद्ध लड़े मारकर उसके सर को आपके चरणों में पेष करूँगा। बाहलेल खाँ इतना बलषाली था कि अपने बदन पर लोहे की जंजीर बांधकर दो हाथियों से विपरीत दिषा में खिंचवाता था पर वह एक कदम भी नहीं डगमगाता था। इतना बलवान पुरुष था। उसने युद्ध की तैयारी के दौरान महाराणा प्रताप पर घात लगाकर

झाड़ी के पीछे से हमला किया था। महाराणा प्रताप ने उसके अचानक वार का बहुत ही चुस्ती से जवाब दिया। बाहलेल खाँ पर इतना जबर्दस्त वार किया कि महाराणा की तलवार उसके सर के साथ बदन को और घोड़े को काटती हुई ज़मीन पर आ टिकी। इस तरह बाहलेल खाँ का अन्त हुआ और महाराणा प्रताप की फुर्ति एवं ताक़त का लोगों को परिचय हुआ।

3. युद्ध के दौरान कई सरदारों ने सलाह दी कि हमें कुंवर मान सिंह को माण्डलगढ़ में ही लड़कर भगा देना चाहिये, पर महाराणा ने अपनी सूझ–बूझ का परिचय देते हुए कहा कि माण्डलगढ़ मैदानी इलाका है। हमारे पास सेना एवं साधन कम हैं। अकबर की सेना में मान सिंह के पास सैनिक भी ज़्यादा हैं और साधन भी। अतः मैदान में लड़ना ठीक नहीं होगा। मान सिंह को गोगुन्दा की पहाड़ियों में आने दो, यहीं घेरकर प्रहार करेंगे और उन्हें परास्त करेंगे।

योजना यह थी कि हल्दी घाटी के दर्रे से जब शाही सेना अपनी ओर आएगी, दर्रा छोटा है। एक बार में एक ही सैनिक निकल सकता है। जैसे–जैसे दर्रे में से निकलेंगे उनको मार गिरायेंगे और जो सेना दर्रे में घुसने की कोषिष करेगी उसे पहाड़ों से तीरों और पत्थरों से मारकर भगा देंगे। महाराणा ने अपनी सेना के दो भाग कर दिये थे। एक दर्रे के इस पार और दूसरा दर्रे के उस पार। जैसे ही शाही सेना खमनोर के मैदान में आयी, दर्रे के उस पार वाले सैनिकों ने जो पहाड़ियों पर छिपे बैठे थे, तीरों एवं पत्थरों की बरसात कर दी। जिससे शाही सेना में खलबली मच गयी और वह दर्रे की ओर दौड़ी। जो दर्रे की ओर जाता वहाँ मौत उसका स्वागत कर रही थी। कुछ दिनों तक यह सिलसिला चलता रहा, पर शाही सेना बहुत ज़्यादा तादात में थी तथा महाराणा की सेना में बहुत कम लोग थे। सारे सरदार राम शाह तंवर को छोड़कर नौजवान थे। उनमें जोष बहुत ज़्यादा था। उन्हें यह छापामार युद्ध प्रणाली रास नहीं आ रही थी क्योंकि

इसमें संघर्ष लम्बा था। नौजवान युद्ध को जल्द खत्म कर शाही सेना को खदेड़ देना चाहते थे। अतः महाराणा एवं राम सिंह तंवर के न चाहते हुए भी अन्य सभी की राय को मानते हुए हल्दी घाटी के दर्रे के पार खमनोर के मैदान में आमने–सामने के युद्ध में उतर आये। यह दिन था 24 जून 1576 का, उस समय मेवाड़ में बहुत भीषण गर्मी का समय था। सुबह का वक़्त था। लगभग सुबह 8 बजे दोनों सेनाएँ आमने–सामने हो गयी थीं। एक तरफ अल्ला हो अकबर के नारे लग रहे थे, दूसरी ओर हर–हर महादेव के नारे लग रहे थे। ढोल, नगाड़े, मृदंग बज रहे थे। चारण वंषावली गा रहे थे। घोड़े हिनहिना रहे थे। हाथी चिंघाड़ रहे थे। तलवारें चमचमा रही थीं। रण बाँकुरे एक–दूसरे का अभिनन्दन कर रहे थे और कह रहे थे कि ज़िन्दा रहे तो फिर मिलेंगे और मर गये तो स्वर्ग में मिलेंगे। महाराणा की सेना का जोष देखते ही बनता था। इसी बीच सभी हथियारों से लैस, महाराणा स्वयं चेतक पर सवार युद्ध के मैदान में आते हैं। एक छोटा–सा उत्साह बढ़ाने वाला भाषण होता है, जिसमें क्षत्रिय धर्म की मर्यादा अक्षुण्ण रखने और अपनी मातृभूमि पर सर्वस्व लुटाने की प्रेरणा दी जाती है। शंख बज उठता है। युद्ध की घोषणा हो जाती है।

देखते ही देखते कुछ ही समय में युद्ध भीषण रूप ले लेता है। आग की लपटों की तरह चारों ओर फैल जाता है। तलवारों की आवाज़ें आने लगती हैं। खून के फव्वारे छूट जाते हैं। जिधर देखो उधर कोलाहल। नर मुण्ड, खून एवं बदहवासी दिखाई देती है। पहले एक घण्टे के युद्ध में ही मुगलों की शाही सेना के पाँव उखड़ जाते हैं और वह पीछे की ओर खदेड़ दी जाती है। वह लगभग 6–7 कोस यानी 10–12 किलोमीटर तक पीछे की ओर भाग जाती है। इस मोर्चे में मेवाड़ी सेना का नेतृत्व एक ओर से हाकिम खाँ सूर अफगानी ने किया। दूसरी ओर स्वयं महाराणा प्रताप ने किया। फिर थोड़ी देर बाद दूसरा मोर्चा लगता है, फिर तेज लड़ाई होती है। इस बार का संघर्ष पिछली बार से भी ज़्यादा भयंकर होता है। राजपूत सैनिक एवं सरदार अपनी जान की बाज़ी लगाकर शाही सेना पर टूट पड़ते

हैं। गाजर–मूली की तरह शत्रुदल को काटते रहते हैं पर शाही सेना की संख्या इतनी अधिक होती है कि उसे काटते–काटते राजपूत सैनिक थक जाते हैं। वे बेहोष होकर गिर पड़ते हैं। एक समय ऐसा आता है जब खून सस्ता और पानी महंगा हो जाता है। गर्मी इतनी भीषण थी कि प्यास के मारे सैनिकों के गले सूख रहे थे। भेजा उबल रहा था। एक–एक राजपूत सैनिक 20–20 को मारकर शहीद हो रहा था। वह शत्रुदल के बीच में जाकर अपना तांडव कर रहा था। ऐसा लग रहा था मानो मरने की होड़

लगी हुई थी। शाही सेना बस अपने को बचाने में लगी हुई थी। उसी बचाव में अपना नुकसान कर रही थी। पर जब मेवाड़ी सैनिक झुण्ड में खुद चलकर आ जाता, कई लोगों को मार देता तो फिर उसे भी मरना ही पड़ता था। महाराणा स्वयं खूब तीव्रता से संग्राम लड़ रहे थे। उनके हाथों भी हजारों सैनिक मारे गये। जिधर उनका चेतक घोड़ा जाता, उधर मैदान खाली हो जाता था। कोई भी महाराणा के सामने आकर युद्ध करने की हिम्मत नहीं दिखा पा रहा था। राम शाह तंवर और उनके दो पुत्र शालीमार, भवानी सिंह तथा पोता प्रताप सिंह, झाला बिंदा, झाला मान सिंह, रावत

नेतसी, राठौड़ राम दास, डोडिया भीम सिंह आदि कई सरदारों ने अप्रत्याषित वीरता दिखाई और शहीद हो गये। यहां पर राम शाह तंवर का बलिदान बहुत महत्वपूर्ण लगता है। अकबर के इतिहासकार लिखते हैं कि राम शाह तंवर एवं उनके दोनों पुत्रों एवं एक पोते ने अदम्य साहस एवं वीरता दिखाई और सारा परिवार शहीद हो गया। यह सब महाराणा

अपनी आँखों से देख रहे थे। गर्मी अपने चरम पर थी तभी दोनों ओर से हाथियों को लड़ने के लिये आगे कर दिया गया। दोनों ओर से हाथियों में जमकर संघर्ष हुआ। महाराणा प्रताप की ओर से हाथी राम प्रसाद बड़ी वीरता से लड़ता हुआ हजारों लोगों को कुचलते हुए आगे बढ़ रहा था और

तीव्र गति से मुगलों के खेमे में प्रवेश करता हुआ बहुत आगे तक चला गया। मुगलों की ओर से लगभग सभी हाथी परास्त हो चुके थे। तभी दुर्भाग्यवश राम प्रसाद के महावत को तीर लगता है। वह नीचे गिर जाता है और मुगलों का महावत उस पर चढ़ जाता है। चारों तरफ से हाथी को घेर लिया जाता है और उसे तीरों व तलवारों से वार कर काबू कर लेते हैं। उसे गिरफ्तार कर अकबर के दरबार में ले जाते हैं। वहां अकबर राम प्रसाद का नाम बदलकर पीर प्रसाद कर देता है। उसे हाथियों के बाड़े में रखा जाता है। उसे बहुत सारा खाना एवं पानी दिया गया। पर राम प्रसाद ने न खाना खाया और न पानी पिया। 15 दिन बिना अन्न–जल के रहा एवं अन्त में अपने प्राण त्याग दिए। मेवाड़ की जनता ने कभी अकबर को अपना बादशाह नहीं माना। जनता तो जनता वहां के पेड़–पौधे, पशु–पक्षी एवं पत्थरों ने भी कभी अकबर को अपना बादशाह नहीं माना। उसका यह जीता जागता उदाहरण है। महाराणा को लगा कि इस लड़ाई को अपने नतीजे पर पहुंचाना चाहिये। इसका मतलब था– मान सिंह पर सीधा हमला। यह बात ध्यान में आते ही महाराणा ने चेतक को इषारा किया। मान सिंह की तरफ जो शाही सेना के मध्य में हजारों सैनिकों के बीच हाथी पर सवार था और युद्ध का संचालन कर रहा था। महाराणा अकेले मान सिंह पर लपके। चेतक घोड़ा जो महाराणा का स्वामीभक्त घोड़ा था, बड़ी ही फुर्ती वाला, पलक झपकते ही हवा में बातें करने लगता था। उसने मिनटों में मान सिंह तक की दूरी तय की और जा पहुँचा मान सिंह के पास। महाराणा ने हजारों सैनिकों को मारते–काटते हुए मान सिंह के समक्ष जाकर उसे ललकारा और उस पर वार शुरू किया। चेतक ने एक सैकेण्ड में अपने दोनों पैर हाथी के मस्तक पर रख दिये और महाराणा ने अपने भाले से वार किया। मान सिंह पर फेंका भाला महावत को लगा। मान सिंह नीचे दुबक गया और तेज खून का फव्वारा छूटा। महाराणा को लगा मान सिंह मारा गया। इसी समय ज़बर्दस्त वार से हाथी घबरा गया और उसने जोर से चिंघाड़ मारी। क्योंकि महावत को मारने के बाद भाला लगा

हाथी की पीठ पर, उसने जोर से अपनी सूंड हिलायी। सूंड में बँधी तलवार ने चेतक का एक पैर घायल कर दिया। अब चेतक तीन टांग पर हो गया। चेतक दूसरी बार छलांग लगाने की स्थिति में नहीं था। अतः महाराणा को पुनः वार कर यह देखना था कि हाथी पर सवार मान सिंह मरा या नहीं मगर समय नहीं था। इसी बीच मान सिंह के हजारों सैनिकों ने महाराणा

को घेर लिया और उनपर प्रहार शुरू कर दिया। स्थिति बड़ी विचित्र एवं भयावह हो चुकी थी। हर ओर से महाराणा पर वार किया जा रहा था। महाराणा अपने आपको बचाते हुए ज़बर्दस्त प्रहार कर रहे थे। अरिदल को काटते जा रहे थे। उसी बीच झाला मान सिंह बड़ीसादड़ी वाले एवं हाकिम खाँ सूर को पता लगता है कि महाराणा हजारों सैनिकों में घिर गये हैं। वे उस ओर दौड़ते हैं और मारकाट शुरू करते हैं। सबको लगता है अन्त आ गया है। वे इतनी विषाल सेना को काटते–काटते थक जाते हैं। लहूलुहान हो जाते हैं। आँखों के आगे अन्धेरा छाने लगता है। प्यास से गला सूख जाता है, फिर भी मारकाट चलती रहती है। झाला मान सिंह एवं हाकिम खाँ सूर को लगता है कि महाराणा को इस भंवर से निकाला जाए। वे एकदम महाराणा के इर्द–गिर्द आ जाते हैं। महाराणा को अनुरोध करते हैं कि आप यहाँ से निकलो। आपको अभी बहुत युद्ध करने हैं। वे समझा–बुझाकर अनुनय–विनय कर महाराणा को वहाँ से निकालते हैं एवं

स्वयं शहीद होते हैं। यहां पर यह सोचने पर मजबूर होना पड़ता है कि इतिहास अपना काम करता है। ईष्वर को जो करवाना होता है, वह करवाकर रहता है। कुछ पल पूर्व यह लग रहा था कि महाराणा युद्ध का अन्त करेंगे, मान सिंह मारा जायेगा। कुछ पल में पासा पलट जाता है। महाराणा को अपनी जान बचाना मुष्किल हो जाता है। उन्हें अपने सरदारों की सलाह पर मेवाड़ की रक्षा के लिये न चाहते हुए भी युद्ध से हटना पड़ता है। ऐसे स्वामीभक्त सरदार अब कहाँ मिलेंगे जो अपनी जान की बाजी लगाकर हजारों सैनिकों की भीड़ में घुसते हैं और अपनी जान देकर महाराणा को बचाते हैं। धन्य हो ऐसी स्वामीभक्ति को जो याद दिलाती है– पन्ना धाय की, झाला मन्ना, जयमल फत्ता, गोरा–बादल एवं ऐसे असंख्य रणबाँकुरों की, जिन्होंने अपने प्राण देकर मेवाड़ का मान बढ़ाया।

झाला मन्ना एवं महाराणा प्रताप हमशक्ल थे। कद–काठी भी एक–सी थी। पहनावा भी एक जैसा था। महाराणा से जाते हुए उन्होंने उनका छतर (सिर पर पहनने वाला टोपा) मांग लिया था। उसे पहनकर वे महाराणा की तरह ही युद्ध कर रहे थे। उन्होंने बड़ा पराक्रम दिखाया और अन्त में मारे गये। उनके मरते ही शाही सेना को लगा कि महाराणा मारे जा चुके हैं। युद्ध समाप्त हो गया। तेज आंधी आने लगी और कुछ समय बाद बहुत तेज़ बारिष हुई, जिससे युद्ध का मैदान जो कि बनास नदी के किनारे था, पानी से लबालब भर गया। खून की वजह से सारा पानी लाल हो गया। उसने एक रक्त तालाब का रूप ले लिया, जिसमें कई नर मुण्ड तैरने लगे।

इस तरह समाप्त हुआ हल्दी घाटी का युद्ध। इधर, महाराणा को घायल चेतक जंगल में लिये जा रहा था। रास्ते में एक 27 फीट चौड़ा नाला आया। चेतक ने हिम्मत कर उसे लांघ लिया पर नाला पार करते ही गिर गया और वहीं अपने प्राण त्याग दिये। स्वामीभक्त चेतक ने महाराणा को सुरक्षित स्थान पर ले जाकर अपने प्राण त्यागे। महाराणा चेतक के जाने से बहुत दुखी हुए। उन्होंने चेतक को अश्रुपूर्ण विदाई दी। आज भी वलिचा में चेतक की समाधि बनी हुई है। यहीं पर एक वृतान्त और आता है कि जब महाराणा स्वयं घायल अवस्था में चेतक भी घायल अवस्था में दोनों युद्ध भूमि से निकल रहे थे, तब ही दो खुरसानी सैनिक महाराणा प्रताप के पीछे लग गये। उसी समय शक्ति सिंह महाराणा प्रताप के छोटे भाई वहाँ पहुँचते हैं और एक ही वार में उन दोनों सैनिकों को मार गिराते हैं और महाराणा को आवाज देते हैं। महाराणा उस वक्त बहुत निराष एवं हताष होते हैं। चेतक मरणासन्न होता है। महाराणा चेतक को श्रद्धांजलि देते हैं। खुद बिलख–बिलखकर रोने लग जाते हैं। शक्ति सिंह भी रोने लग जाते हैं। वहाँ दोनों भाइयों का भरत मिलाप होता है। तब से शक्ति सिंह पुनः महाराणा के साथ हो जाते हैं। शक्ति सिंह के वंषज भविष्य में शक्तावत कहलाये तथा महाराणा के वंषज राणावत कहलाये।

लड़ाई के दूसरे दिन दोनों सेनाओं में से कोई लड़ने को नहीं आया। न किसी ने अपनी जीत का ऐलान किया। शाही सेना भय एवं आतंक से घबराई हुई थी। उन्हें हर वक्त यह डर सता रहा था कि महाराणा किसी भी वक्त आकर हम पर हमला कर सकते हैं। उनके पास भोजन सामग्री भी सब खत्म हो गयी थी। पषुओं का मांस एवं पेड़ों पर लगे आम खाकर गुज़ारा कर रहे थे। इससे अधिकांष सैनिक बीमार पड़ गये थे और सभी कुछ समय बाद मान सिंह के साथ खाली हाथ वापस आगरा लौट गये।

इतिहास में कहीं एक जगह यह लिखा गया है कि हल्दी घाटी में महाराणा प्रताप की हार हुई पर यदि सारे घटनाक्रम को गहराई से देखा

जाये तो पता चलेगा कि यह एक शाही सेना एवं महाराणा की सेना के बीच 4 घण्टे का संक्षिप्त संघर्ष अनिर्णित रहा, जिसमें महाराणा का पलड़ा भारी रहा तथा शाही सेना भयभीत थी।

मेवाड़ के महाराणा, उनके सरदार एवं समाज में किसी ने भी अपनी हार नहीं मानी। यह तो अकबर एवं महाराणा प्रताप के बीच के लम्बे संघर्ष की शुरुआत मात्र थी। जब मान सिंह अकबर के दरबार में पहुंचे तो अकबर ने मान सिंह से नाराजगी जाहिर की तथा कुछ समय के लिये ड्योढ़ी बन्द करवा दी। इससे यह सिद्ध होता है कि हल्दी घाटी के परिणामों से अकबर खुष नहीं थे।

तेरह अक्टूबर 1976 को अकबर स्वयं अपनी विषाल सेना के साथ गोगुन्दा आये। जिससे कि महाराणा प्रताप को या तो अपने अधीन कर सके या मार सके। 6 महीने तक मेवाड़ की पहाड़ियों में चक्कर लगाते रहे। कई मोर्चों पर संघर्ष हुए पर न तो महाराणा को हरा सके, न गिरफ्तार कर सके और न ही मार सके। महाराणा बड़ी कुषलता से छापामार युद्ध प्रणाली का संचालन कर रहे थे। थक–हारकर अकबर वापस चले गये।

अकबर के जाने के बाद महाराणा ने पुनः अपना इलाका अपने काबू में किया और सारे मेवाड़ में अपने थाने स्थापित किये। इस पर अकबर ने पुनः राजा भगवन्त दास, कुंवर मान सिंह, मिर्जाखाँ (खानखाना) कासिम को भेजा। इस बार भी कई लड़ाइयाँ हुईं पर शाही सेना कामयाब नहीं हुई। पर एक बार अमर सिंह के नेतृत्व में एक लड़ाई में शाही सेना भाग गई और मिर्जा खानखाना की सारी बेगमें और उनका लाव लष्कर पकड़ लिया गया। उन्हें महाराणा के समक्ष पेश किया गया। महाराणा ने तुरन्त बहन–बेटियों की इज्जत करते हुए सारी बेगमों समेत लाव लष्कर बाइज्जत खानखाना को लौटा दिया। इस पर खानखाना बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने अकबर के दरबार में जाकर महाराणा प्रताप की बड़ी प्रषंसा की तथा कहा कि वह एक महान प्रतापी और उसूलों वाला हिन्दू राजा है।

हमारा उनके साथ बैर निरर्थक है। अकबर हिन्दुस्तान के बेताज बादषाह बनना चाहते थे। अतः महाराणा प्रताप का स्वाभिमान, देष प्रेम एवं मेवाड़ की स्वतंत्रता उनको बहुत खटकती थी। वह चाहते थे कि हिन्दुस्तान के और राजा–महाराजाओं की तरह प्रताप भी उनकी अधीनता स्वीकार करें। अतः अकबर ने 15 अक्टूबर 1578 को शाहबाज खान के नेतृत्व में फिर एक सेना भेजी। लक्ष्य था महाराणा को बिल्कुल समाप्त कर मेवाड़ को अपने अधीन करना। कुम्भलगढ़ के किले में भयंकर युद्ध हुआ पर न महाराणा हारे, न पकड़ में आये। लगभग 6 महीने तक शाहबाज खान एवं उनके साथी भटकते रहे, पर कुछ हाथ न लगा और अन्त में थक–हारकर वापस लौट आए। महाराणा लड़ते हुए चावण्ड चले गये और चावण्ड में अपना निवास स्थान बनाया। वहाँ चावण्ड माता का छोटा–सा मंदिर भी बनवाया।

इन्हीं दिनों भामाषाह ने मालवा विजय कर महाराणा को 25 लाख रुपये के चांदी के कल्दार एवं 20,000 सोने की अषर्फियाँ (आज के जमाने के हिसाब से ये कई लाख करोड़ रुपया था।) चूलिया ग्राम में महाराणा को भेंट कीं, जो कि अपने आपमें अप्रत्याषित घटना थी। उसी धन से महाराणा में नई ताकत आई और फिर अकबर से लड़ने को तैयार हुए। थोड़े ही दिनों बाद दिवेर के शाही थाने पर आक्रमण किया गया। उसका नेतृत्व अमर सिंह महाराणा के ज्येष्ठ पुत्र ने किया। उस युद्ध में मुगल थानेदार सुलतान खाँ पर बरछी से ऐसा वार किया कि वह सुलतान खाँ के आर–पार हो गया। सुलतान खाँ वहीं मारा गया। उसके बदन में बरछी फँस गयी, जिसे कोई नहीं निकाल पा रहा था। फिर अमर सिंह खुद आये और उन्होंने उस बरछी को निकाला। दिवेर की विजय बड़ी शुभ थी। उसके बाद महाराणा ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। लगातार एक के बाद एक किले विजय करते रहे। 15 दिसम्बर 1578 में पुनः शाहबाज खाँ अकबर की सेना लेकर मेवाड़ में घुस आया। कई मोर्चों पर युद्ध हुआ पर अकबरी सेना को कोई जीत हासिल न हुई। न तो महाराणा पकड़े गये या मारे गये और न ही मेवाड़ की जनता ने गुलामी स्वीकार की। जब शाहबाज खाँ वापस थक–हारकर

चला गया तब महाराणा ने आज्ञा दी कि कोई मैदानी इलाकों में नहीं रहेगा और न कोई खेती करेगा। इससे सारी जनता धीरे–धीरे पहाड़ों पर आकर बस गयी। सारे खेत उजाड़ दिये गये। देखते ही देखते खेत जंगलों में परिवर्तित हो गये। इससे सूरत से आगरा–दिल्ली का रास्ता बन्द हो गया और वहाँ का व्यापार भी। इससे बादषाह को बड़ा भारी नुकसान हुआ।

सम्पूर्ण भारत में अकबरकाल में राजपूत राजा लगभग सभी ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी। महाराणा प्रताप ही एक मात्र ऐसे राजा थे जो मेवाड़ के स्वामी थे, हर मुसीबत एवं तकलीफ झेलते रहे, पर कभी अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की। इस पर एक प्रसंग आता है कि बीकानेर के राजा राय सिंह के छोटे भाई पृथ्वीराज से बादषाह अकबर ने यह कहा कि अब तो प्रताप भी हमें बादषाह स्वीकार करता है और हमें सलाम करता है। इस पर पृथ्वीराज ने कहा कि हुजूर विष्वास नहीं होता। आप कहें तो पत्र लिखकर पूछ लेते हैं? अकबर ने कहा– हाँ ऐसा कर लिया जाए। पत्र लिखा गया इस पर जो सवाल–जवाब हुए, वे बड़े मार्मिक एवं प्रेरणादायक हैं। इसका सुन्दर चित्रण आज की भाषा में कन्हैया लाल सेठिया ने **पाथल एवं पीथल** नाम की कविता में किया है। पाठकों से निवेदन है कि वे इसे जरूर सुनें। वार्तालाप का सार यही था कि प्रताप अडिग है, जब तक जिंदा है, लड़ता रहेगा। किसी भी कीमत पर मेवाड़ को मुगलों के अधीन नहीं होने देगा और वह स्वयं कभी अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं करेगा।

प्रताप की निर्भीकता, अडिगता, स्वाभिमान एवं दृढ़ इच्छाशक्ति, संघर्ष झेलने के जज्बे को सम्पूर्ण हिन्दु समाज आज भी इज्जत देता है और उन्हें अपना सिरमौर मानता है।

महाराणा जीवन पर्यन्त पहाड़ों में ही रहे। हल्दी घाटी के युद्ध के बाद छापामार युद्ध प्रणाली का सहारा लिया। मुगल सेना पर उचित मौका देखकर घात लगाकर हमला करते और भगा देते थे। मेवाड़ का पूरा 90

मील लम्बा एवं 70 मील चौड़ा पहाड़ी हिस्सा जो कि कुम्भलगढ़ से लगाकर दक्षिण ऋषभ देव तक एवं देबारी से लेकर सिरोही तक, इसके अलावा छप्पन से लेकर भीण्डर, सलुम्बर, कानोड़, बानसी, धर्यावद एवं बड़ी सादड़ी, सीता माता का पूरा जंगली इलाका भी महाराणा के पास था। इसी विषाल जंगली एवं पहाड़ी क्षेत्र में महाराणा स्थान बदल–बदलकर रहा करते थे और अपनी सैन्य तैयारी एवं प्रषासन का काम करते थे। संघर्ष बहुत किया, अभाव भी बहुत देखा पर भुखमरी जैसी नौबत कभी नहीं आई। क्योंकि सारी जनता साथ थी तथा सबसे ज्यादा समर्पण से वहां की भील एवं मीणा जनजातियाँ महाराणा की सेवा में लगी हुई थीं। किसी तरह की समस्या नहीं थी। बस हर वक्त जान हथेली पर लेकर रहना पड़ता था। छोटी–मोटी लड़ाइयाँ आम थीं पर जब–जब बादषाह की सेना चढ़ाई करती तब लड़ाइयाँ बड़ी होती थीं पर एक बार भी बादषाह की सेना सम्पूर्ण रूप से मेवाड़ को विजयी नहीं कर सकी और न महाराणा को परास्त कर अपने अधीन कर सकी या मार सकी।

अन्तिम चढ़ाई महाराणा पर जगन्नाथ कच्छावा के नेतृत्व में 6 दिसम्बर 1584 को हुई। दो वर्ष तक यह सैन्य अभियान चला पर कोई सफलता हासिल न हुई। अन्त में 1586 में यह अभियान खत्म हुआ। शाही सेना वापस लौट गई। सन् 1586 में ही महाराणा ने चित्तौड़ और माण्डलगढ़ के किले को छोड़कर सारा मेवाड़ अपने कब्जे में कर लिया। सन् 1576 से लेकर 1586 तक का कार्यकाल युद्ध का कार्यकाल रहा। वर्ष 1586 से 1597 तक महाराणा प्रताप ने चावण्ड में अपनी राजधानी बनाई तथा अपना शासन चलाया। इन 11 वर्षों में महाराणा ने अपनी राज्य

व्यवस्था ठीक की। अपने सभी सरदारों का उचित सम्मान किया। उन्हें जागीरें बक्षीं। अपने कुल के गौरव में मन्दिर आदि बनवाये। उदयपुर को ठीक से बसाया। संगीत, कला, संस्कृति, इतिहास आदि का लेखन करवाया और अपनी प्रजा को खुष किया, पर अपना जीवन सादगीपूर्ण रखा। पुत्र अमर सिंह के पुत्र कर्ण सिंह के जन्म पर बहुत खुषियाँ मनाई गईं। सन् 1597 में महाराणा प्रताप शेर के षिकार के वक्त धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाते हुए धनुष हाथ से फिसलकर धनुष की लकड़ी पेट में लग गई, जिससे वह घायल हो गये और बीमार रहने लगे। घाव गहरा होता गया और उस पर कोई इलाज नहीं लगा। बहुत दर्द रहने लगा। कुछ दिनों के लिये बहुत परेषान रहे। दर्द के मारे असहनीय पीड़ा हो रही थी। पर प्राण नहीं निकल रहे थे। सभी सरदार उनके निकट थे। सलुम्बर के राव साहब जो बहुत निकट थे, ने पूछा कि आप क्यों परेषान हैं? प्राण क्यों नहीं छोड़ रहे? तो उन्होंने कहा कि मुझे अमर सिंह पर थोड़ा कम विष्वास है। वह थोड़ा आराम पसन्द है। आप विष्वास दिलाइये कि आप सब लोग मेवाड़ की आन–बान–शान एवं मर्यादा का पालन करेंगे। अपने कुल का मान कभी कम नहीं होने देंगे। इस पर सभी सरदारों ने अमर सिंह समेत प्रतिज्ञा की। तब महाराणा को संतोष हुआ और तत्क्षण प्राण त्याग दिये। वह दिन था 19 जनवरी 1597, चावण्ड के डेढ़ मील दूर बंडोसी गाँव के निकट बहने वाले नाले के किनारे उनका दाह संस्कार हुआ। वहाँ पर एक आठ खम्बों वाली छोटी छतरी का निर्माण हुआ है। हम सबको वहाँ जाकर दर्षन अवष्य करने चाहिएं।

महाराणा के स्वर्गवास की सूचना जब अकबर को मिली तो वह खुष होने के बजाय उदास हुआ। उसकी उदासी देखकर एक चारण ने एक दोहा पड़ा। उसका आषय था ''हे गुहिलोत राणा प्रताप सिंह तेरी मृत्यु पर बादषाह ने दांतों तले अंगुली दबाई और निःष्वास के साथ आंसू टपकाये, क्योंकि तूने अपने घोड़ों को दाग नहीं लगने दिया, अपनी पगड़ी को किसी के सामने झुकने नहीं दिया, तेरा यष अमर हो गया। तू अपने राज्य को बांये कंधे से चलाता रहा। नौरोज़ में कभी न बादषाह के डेरों में गया, न कभी शाही झरोखों के नीचे खड़ा रहा। तेरा रौब दुनिया पर काबिज था। अतः तू सब तरीके से जीत गया।'' यह सुनकर दरबारियों ने सोचा बादषाह क्रुद्ध होगा और चारण को सजा देगा पर बादषाह ने उसे इनाम दिया और कहा कि कवि ने मेरे मन की बात कह दी। महाराणा के 11 रानियाँ थीं और 17 पुत्र थे। अकबरकाल से आज तक महाराणा के यषगान में कोई कमी नहीं हुई है। अकबरकाल में भी अकबर के सामने कई बार चारणों ने महाराणा के यषगान किये, जिन्हें अपनी जान की परवाह नहीं थी। सम्पूर्ण राजपूत समाज चाहे अकबर की अधीनता स्वीकार कर चुका था और समय–समय पर अकबर के लिये लड़ता भी था। मान सिंह, जिसके बूते आधा भारत अकबर ने विजयी किया, पर राजपूतों के स्वाभाविक नेता एवं सम्मानीय महाराणा प्रताप ही थे और सभी राजपूत उन्हीं पर गर्व करते थे।

प्रातः स्मरणीय हिन्दूपति वीर षिरोमणि महाराणा प्रताप सिंह का नाम राजपूताने के इतिहास में सबसे अधिक महत्वपूर्ण और गौरवास्पद है। राजपूताने के इतिहास को इतना उज्ज्वल और गौरवमय बनाने का अधिक श्रेय उन्हीं को है। वह स्वदेषाभिमानी, स्वतन्त्रता के पुजारी, रण कुषल, स्वार्थत्यागी, नीतिज्ञ, दृढ़ प्रतिज्ञ, सच्चे वीर और उदार क्षत्रिय तथा कवि थे। उनका आदर्ष था कि बप्पा रावल का वंषज किसी के आगे सिर नहीं झुकायेगा। स्वदेष प्रेम, स्वतंत्रता और स्वदेषाभिमान उनके मूलमन्त्र थे। उनको अपने वीर पूर्वजों के गौरव का गर्व था। वह कहा करते थे कि यदि

महाराणा सांगा और मेरे बीच कोई और न होता तो चित्तौड़ कभी मुसलमानों के हाथ न जाता। वह ऐसे समय मेवाड़ की गद्दी पर बैठे जब उनकी राजधानी चित्तौड़ और प्रायः सारी समतल भूमि पर मुसलमानों का अधिकार हो गया था। मेवाड़ के बड़े–बड़े सरदार भी पहले की लड़ाइयों में मारे जा चुके थे। ऐसी स्थिति में उनके विरुद्ध बादषाह अकबर ने उनको विध्वंस करने के लिये अपने सम्पूर्ण साम्राज्य का बुद्धिबल, बाहुबल और धनबल लगा दिया था। बहुत से राजपूत राजा भी अकबर के ही सहायक बने हुए थे। यदि महाराणा चाहते तो वह भी उनकी तरह अकबर की अधीनता

स्वीकार कर लेते तथा अपने वंष की पुत्री उसे देकर साम्राज्य में एक प्रतिष्ठित पद पर आराम से रह सकते थे, परंतु वह स्वतंत्रता के पुजारी केवल थोड़े से स्वदेषभक्त और कर्त्तव्यपरायण राजपूतों और भीलों की सहायता से अपने देष की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो गये। उनकी वीरता, रणकुषलता, कष्ट सहिष्णुता और नीतिमत्ता अत्यंत प्रषंसनीय और अनुकरणीय थी। इन्हीं गुणों के कारण वह अकबर को, जो उस समय संसार का सबसे अधिक शक्तिषाली तथा ऐष्वर्य सम्पन्न सम्राट था, अपने छोटे से राज्य के बल पर वर्षों तक हैरान करते रहे और फिर भी अधीन न हुए। अकबर ने उन्हें अधीन करने के लिये बहुत से प्रयत्न किये, अपने

योग्य सेनापतियों को कई बार भेजा, एक बार स्वयं भी चढ़ आये, परन्तु राणा के आगे एक भी चढ़ाई में उनका मनोरथ पूर्ण न हुआ। राणा ने बादषाह के आगे सिर न झुकाया और न उन्हें बादषाह ही कहा। उन्होंने मेवाड़ के उपजाऊ प्रदेष को उजाड़ दिया, खेती नष्ट करवा दी और शाही फौज की रसद तथा व्यापार का मार्ग रोककर नीतिज्ञता का परिचय दिया। वह केवल वीर और रणकुषल ही नहीं, धर्म को समझने वाले सच्चे क्षत्रिय थे। केवल षिकार के लिये कुछ सिपाहियों के साथ आये हुए मान सिंह पर धोखे व छल से हमला न कर और अमर सिंह द्वारा पकड़ी गई बेगमों को सम्मानपूर्वक लौटाकर उन्होंने अपनी विषाल सहृदयता का परिचय दिया। प्रलोभन देकर राजपूत राजाओं और सरदारों को सेवक बनाने वाली अकबर की कूटनीति का यदि कोई उत्तर देने वाला था तो वह महाराणा प्रताप ही थे।

महाराणा प्रताप के विषय में कर्नल टॉड का कथन है – 'अकबर की उच्च महत्वाकांक्षा, शासन निपुणता और असीम साधन ये सब बातें दृढ़चित्त महाराणा प्रताप की अदम्य वीरता, कीर्ति को उज्ज्वल रखने वाला दृढ़ साहस और किसी अन्य जाति में न पाये जावे, ऐसे निष्कपट अध्यवसाय को दबाने में पर्याप्त न थी। आल्प्स पर्वत के समान अरावली में कोई भी ऐसी घाटी नहीं, जो प्रताप के किसी न किसी वीर पराक्रम, उज्ज्वल विजय या उससे अधिक कीर्तियुक्त पराजय से पवित्र न हुई हो। हल्दीघाटी मेवाड़ की थर्मोपिली और दिबेर मेवाड़ का मेरेथान है।'

वीर–श्रेष्ठ महाराणा के कार्य आज भी मेवाड़ की एक–एक पुस्तक एवं साहित्य में वर्तमान समय में जान पड़ते हैं। आज भी उनके वीर कार्यों की कथाएं और गीत प्रत्येक मेवाड़ी के हृदय में उत्तेजना पैदा करते हैं। महाराणा का नाम न केवल राजपूताने में वरन् सम्पूर्ण भारतवर्ष में अत्यंत आदर और श्रद्धा से लिया जाता है। अंग्रेजी तथा भारतवर्ष की प्रायः सभी भाषाओं में प्रताप के वीरत्व और यषोगान के अनेक ग्रन्थ बन चुके हैं और

बनते जा रहे हैं। भारत के भिन्न–भिन्न विभागों में महाराणा की जयन्ती भी मनाई जाने लगी है। जब तक संसार में वीरों की पूजा रहेगी, तब तक महाराणा का उज्ज्वल और अमर नाम लोगों को स्वतन्त्रता और देषाभिमान का पाठ पढ़ाता रहेगा। भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में महाराणा प्रताप, छत्रपति षिवाजी एवं गुरु गोविन्द सिंह से प्रेरणा लेकर कई स्वतंत्रता सेनानियों ने अपने प्राण हंसते–हंसते गवां दिये थे। आज भी और भविष्य में भी भारत में देष एवं समाज के लिये मर मिटने की बारी आयेगी तो प्रेरणा महाराणा प्रताप से ही ली जायेगी।

सवाल यह उठता है कि मेवाड़ एवं राजपूताने के इतिहास में महाराणा प्रताप का ही नाम सबसे अधिक आदर से क्यों लिया जाता है?

जबकि उनके जैसे बलशाली एवं साहसी योद्धा तो और भी बहुत थे। उन्होंने भी उनसे अधिक पराक्रम दिखाया था पर जिन विपरीत परिस्थितियों में महाराणा प्रताप ने हिम्मत दिखायी और संघर्ष किया, ऐसा संघर्ष किसी ने नहीं किया। वे नदी की धारा के विपरीत चले और अपना कीर्तिमान स्थापित किया। दूसरा, वे सर्व समाज के स्वभाविक नेता थे। उनके साथ न सिर्फ राजपूत बल्कि हर समाज के लोग थे और वे सबको साथ लेकर

चल रहे थे। जिसमें मुसलमान, बनिया, ब्राह्मण, भील, मीणा, खेतीहर जातियाँ सभी जी–जान से महाराणा का साथ निभा रहे थे। तीसरा, उन्होंने आम व्यक्ति का जीवन जिया। अपनी जिंदगी में सादगी बरती और हमेशा सच एवं न्याय का साथ दिया। चौथा, उन्होंने कभी अपने आदर्शों एवं जीवन मूल्यों को किसी भी परिस्थिति में नहीं छोड़ा। इसलिये वह सबसे अधिक आज तक सम्मान पाते हैं। धन्य हो उनकी माताजी जिसने ऐसे अदम्य साहसी, वीर, पराक्रमी एवं दृढ़–निश्चयी पुत्र को जन्म दिया।

दूसरा सवाल उठता है कि प्रताप महाराणा प्रताप कैसे बने? प्रताप महाराणा प्रताप बने– अपने निःस्वार्थ हंसते–हंसते बलिदान होने वाले स्वामी भक्त साथियों और स्वामीभक्त घोड़ों एवं हाथियों की बदौलत, जिन्होंने हर समय उनके वचनों का पालन करने के लिये अपनी जान की बाजी लगा दी। उनके एक आदेश पर मरने की प्रतिस्पर्धा होने लगती थी। लोग सबसे पहले लड़ने एवं अपना बलिदान करने के लिये लालायित रहते थे।

इस बात पर विवाद होता था कि युद्ध के मैदान में हरावल (front) में कौन लड़ेगा यानी कि कौन सबसे पहले मरने को तैयार होगा। इसलिये कहता हूँ– आइये हम बनाते हैं– पन्ना धाय, जयमल, फत्ता, राम सिंह तंवर, शालीवाहन, भवानी सिंह झाला मन्ना, हाकिम खां सूर, भीम सिंह डोडिया, रावत नेतसिंह, राठौड़ राम दास एवं भामाशाह, रानी पद्मिनी, रानी करूणावती, कल्ला जी राठौड़। जरूरत है स्वामीभक्त निस्वार्थ, देश एवं समाज के लिये हंसते–हंसते बलिदान करने वालों की, महाराणा प्रताप तो इनमें से कोई भी बन जायेगा।

महाराणा का कद लम्बा, आँखें बड़ी, चेहरा भरा हुआ और प्रभावषाली, मूंछें बड़ी, छाती चौड़ी, बाहु विषाल और रंग गेहुँआ था। वह पुराने रिवाज के अनुसार दाढ़ी नहीं रखते थे। युद्ध भूमि में वे जब निकलते थे तो उनका प्रभावषाली व्यक्तित्व देखते ही बनता था। उनका भाला 80 किलो का था

तथा कवच 72 किलो का था। तलवार 20 किलो की थी एवं ढाल 40 किलो की थी। इतना सब पहनकर वह युद्ध किया करते थे। उनमें चीते की तरह फुर्ती थी और उनका घोड़ा चेतक बहुत ही तेज गति से भागता था। कुछ ही क्षण में हवा में बातें करता था और एक क्षण में चौकड़ी भर लेता था। जिससे महाराणा पर कोई वार न कर सके। वे एक पराक्रमी योद्धा थे, महान नायक थे तथा दृढ़ प्रतिज्ञ थे, इसलिये आज भी मेवाड़ में वरिष्ठ महिलाएं अपनी बहुओं को आषीर्वाद देते हुए कहती हैं **''माई एहा पूत जण जेहा राणा प्रताप। अकबर सूतो औधकै जाण सिराणे सांप।।''**

जय चित्तौड़!

जय मेवाड़!

जय हिन्द!

जय भारत!!

संदर्भ साभार– वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप, सचित्र पुस्तक। लेखक– गौरीशंकर हीराचंद ओझा।